International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(2): 57-58

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(2): 57-58
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 16-02-2016
Accepted: 17-03-2016

डॉ. मनुभाई एस. प्रजापति
आर्ट्स, सायन्स एण्ड कोमर्स कोलेज,
पिलवाई (उ.गु)

Correspondence
डॉ. मनुभाई एस. प्रजापति
आर्ट्स, सायन्स एण्ड कोमर्स कोलेज,
पिलवाई (उ.गु)

पञ्चमहाकाव्य में न्याय – वैशेषिक सिद्धान्त का निरुपण

डॉ. मनुभाई एस. प्रजापति

पञ्चमहाकाव्य में नैषधीयचरित ही एक ऐसा महाकाव्य है जिसमें न्याय – वैशेषिक सिद्धान्तों का अत्यधिक उल्लेख हुआ है | न्याय में शब्द को आकाश का गुण कहा है |[१] उक्त सिद्धान्त को दृष्टिगत रखते हुए कालिदास ने रावणवध के पश्चात् दण्डकवन से पुष्पक विमान द्वारा प्रत्यागमन करते समय आकाश के गुण को इस प्रकार व्यक्त किया है | रामचन्द्रजी पुष्पक विमान में बैठकर आकाश में चलते हुए सीता को समुद्र की शोभा का वर्णन करते हैं – "इसके पश्चात् विमान में चढ़कर उस आकाश में चलते हुए जिसका गुण शब्द है, राम कहलाने वाले भगवान् विष्णु समुद्र को देखकर अपनी प्रिया सीता से कहने लगे |"[२]

'शब्द आकाश का गुण है' न्याय के इस सिद्धान्त की ओर कवि माघ संकेत करते हुए कहते हैं – "समर्थ राजा स्वयं निष्क्रिय होकर भी दूसरों से साधित कार्य को वैसे अपना गुण बना लेता है, जैसे व्यापक आकाश स्वयं निष्क्रिय होता हुआ भी दूसरे नगाड़े आदि से उत्पन्न शब्द को अपना गुण बना लेता है |"[३]

न्याय के प्रायः अधिकांश मनीषी शैव थे |[४] भासर्वज्ञ ने तो शिव तथा परमेश्वर को एक ही बताया है |[५] वोधिचर्चावतार पंजिका में ईश्वर को शंकर के रूप में ही देखा गया है |[६] उदयन ने अपनी न्याय कुसुमांजलि में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया है | उस सत्ता को उन्होंने भव या शिव कहा है |[७] नैयायिको ने ईश्वर को परानुग्रह स्वभाव अर्थात् भक्तों पर कृपाशील स्वभाव वाला कहा है |[८]

उपर्युक्त सिद्धान्तों की ओर संकेत करते हुए कालिदास के सप्तर्षियों ने हिमालय से पार्वती की याचना करने के प्रसंग में कहा – "जो भगवान शिव अणिमादि आठों सिद्धियों से युक्त एवं मस्तक पर अर्ध चन्द्रमा को धारण करने वाले हैं, तथा जिन्हें छोड़कर अन्य और कोई भी ईश्वर शब्द से नहीं पुकारा जा सकता |[९] आगे शंकर स्वयं सप्तर्षियों से अपने परानुग्रह स्वभाव की ओर संकेत कर यह – 'हमारी कोई प्रवृति स्वार्थमय नहीं है', कहकर पूर्वोक्त न्यायदर्शन के आचार्यों के सिद्धान्त को ही कालिदास ने व्यक्त किया जान पड़ता है |[१०] शिव के परमार्थस्वरूप का चित्र उनसे देवकृत पुत्रोत्पत्ति की कामना में भर स्पष्ट रूप से अंकित है |[११]

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य में अर्जुनकृत शिव की स्तुति में पूर्वोक्त न्यायदर्शन सम्मत ईश्वर के परानुग्रहस्वभाव की ही स्पष्ट झलक दिखाई देती है | अर्जुन ने शंकर से कहा – 'आप अजन्मा होकर भी शरीर धारण कर मनुष्यलीला करते हैं प्राणी तो कर्मबन्धन से विवश होकर शरीर धारण करते हैं, और आप परोपकारार्थ अपनी इच्छा से शरीर धारण करते हैं |[१२] इसके अतिरिक्त एकाधिक स्थलों पर पूर्वोक्त भाव व्यक्त हुआ है, जैसे – 'शरणागतार्तिहारिणे'[१३] 'गतिर्भवानेव दुरात्मनामपि' |[१४]

नैषधीयचरित में न्याय – वैशेषिक सिद्धान्तों का अत्याधिक उल्लेखकर कवि श्री हर्ष ने उक्त काव्य को एक प्रकार से दार्शनिक काव्य का ही रूप दे दिया है | सभी का यहाँ उल्लेख करना असम्भव होगा | अतः हम यहाँ कुछ ही स्थलों को उपन्यस्त करेंगे जिनमें कवि श्री हर्ष की इस दर्शन में 'गहरी – पैठ' का ज्ञान हो जायेगा |

न्यायदर्शन ने कार्य की उत्पत्ति में तीन कारणों – १. समवायि अथवा उपादान कारण २. असमवायि अथवा सहकारि कारण तथा ३. निमित्त कारण | उदाहरणर्थे – घड़े के लिए मिट्टी, तन्तु – संयोग पट का असमावायि कारण है। और घड़े बनाने वाला कुम्हार तथा उसके औजार निमित्त कारण है।

नैषधीयचरित में हंस नल से दमयन्ती के आश्चर्यजनक सौन्दर्य की प्रशंसा करता हुआ कहता है – "राजन, घट में जो चक्र को फिराने का गुण दिखाता है वह उसके कारण रूप दण्ड से प्राप्त हुआ है। क्योंकि घट दमयन्ति के उच्चस्तन का रूप धारण कर दीप्ति के समूह से दर्शकों की दृष्टि को चाक की तरह घुमाता है। अर्थात् चक्र – भ्रम उत्पन्न कर देता है।[१५]

कार्य में उसके समवायिकारण के गुणों की सत्ता के सिद्धान्त का उल्लेख नैषधीयचरित में एकाधिक स्थलों पर हुआ है | - हंस दमयन्ती से अपनी स्वर्णिम शरीर की रूप – सौन्दर्य समृद्धि का हेतु बताता है – ''हमें अन्न के अनुकूल शरीर की कान्ति की समृद्धि मिली है, क्योंकि स्वर्ग नदी की सुनहरी कमलनियों के नाल तथा मृणाल के अग्रभाग हमें खाने को मिलते हैं | कारण से ही कार्य गुण प्राप्त करता है |''[१६]

न्यायशास्त्र में मन को प्रति शरीर एक तथा अणु – परिमाण बताया गया है |[१७]

राजा नल के अत्यन्त तीव्रगामी घोड़े के चरण में संलग्न धूल के प्रति कवि श्री हर्ष इस प्रकार उत्प्रेक्षा करते हैं – ''निरन्तर फर्शे खोदने से उठी हुई रज के कण, (जो घोड़े के चरणों में लगे थे) उसके चरणों की सेवा करते थे, ऐसा प्रतीत होता था कि मानो लोगों के मन परमाणु रूप धारण करके उस घोड़े से अत्यन्त वेग को सीखने के लिए आए हुए हैं |''[१८]

कवि ने अन्यत्र भी मन के परमाणु रूप का उल्लेख किया है |[१९] वैशेषिक दर्शन के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार है – दो परमाणुओं के संयोग से प्रथम द्वयणुक का निर्माण होता है, दोनों परमाणु उस द्वयणुक के समवायिकारण होते हैं, उन दोनों परमाणुओं का संयोग असमवायिकारण होता है, और अदृष्टादि निमित्त कारण होता है | उसके बाद तीन द्वयणुकों का क्रिया से संयोग होने पर एक त्रयणुक की उत्पत्ति होती है | तीनों द्वयणुक उस त्रयणुक के समवायिकारण होते हैं और शेष पूर्ववत् | इसी प्रकार चार त्रयणुकों से चतुरणुक, चतुरणुकों से अन्य स्थूलतर और स्थूलतरों से अन्य स्थूलतम पदार्थ उत्पन्न होते हैं | इस प्रकार स्थूल पृथ्वी, स्थूल तेज और स्थूल वायु उत्पन्न होता है | कार्यभूत इन द्रव्यों के रूप आदि गुण उनके आश्रयभूत समवायि कारण के रूप आदि से उत्पन्न होते हैं – क्योंकि कारण के गुण कार्य के गुणों को उत्पन्न करते हैं |''[२०] इसी प्रकार उक्त परमाणुओं के विभाजन से प्रलय का प्रारम्भ होता है |

नैषधीयचरित में सृष्टि के पूर्वोक्त नियम की ओर संकेत कर एक सुन्दर कल्पना का उल्लेख किया गया है – हंस नल- दमयन्ती के दो परमाणु रूप मनो के संयोग से एक नष्ट सृष्टि का पुनः निर्माण करता हुआ कहता है – ''तुम दोनों के मन परस्पर संयोग होने के कारण विलासयुक्त होकर उसी तरह काम का शरीर पुनः उत्पन्न होने को प्रवृत्त हो जैसे दो परमाणु द्वयणुक उत्पन्न करते हैं |''[२१]

न्यायदर्शन के अनुसार नेत्र इन्द्रिय में रश्मियों होती हैं, उन रश्मियों का जब किसी अन्य पदार्थ के साथ सन्निकर्ष होता है, तब उस पदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है |[२२]

पूर्वोक्त न्यायदर्शन के सिद्धान्त की ओर कवि श्री हर्ष ने इस प्रकार संकेत किया है – ''नल के नेत्रों की किरणें दमयन्ती के उद्देश्य से अपांग तक भी न पहुंची कि उसके पूर्व ही कामदेव के बाणों की नोंक तक दमयन्ती के प्रत्येक अंग में प्रविष्ट हो गई |[२३]

न्यायदर्शन में परमात्मा विभु, सर्वज्ञ तथा नित्य है |[२४] नैषधीयचरित में चार्वाक पूर्वोक्त ईश्वरवाद का उपहास करता हुआ कहता है – ''यदि देवता सर्वज्ञ, कृपालु तथा सफल वचन है तो केवल वाणी के व्यय से हमें – पार्थियों को क्यों पूर्ण मनोरथ नहीं करता |''[२५]

वेदान्तियों तथा मीमांसकों ने तमः को एक द्रव्य माना है तथा प्रभाकर मत के कुछ मीमांसक उसे रूप – दर्शन का अभाव कहते हैं |[२६] और कुछ ने आलोक (तेजः) ज्ञान का अभाव कहा है |[२७]

कवि श्रीहर्ष ने तमः के विषय में वैशेषिकों के मत को सहारा है, तदनुसार सन्ध्या के समय में तमः का वर्णन करते हुए नल दमयन्ती से कहते हैं – ''सुन्दरि, मेरी सम्मति में अन्धकार के विवेचन में वैशेषिक मत उचित प्रतीत होता है, क्योंकि वह दर्शन (ज्ञान) औलूक अर्थात् उलूक (कणाद) से बनाया हुआ कहा जाता है और उलूक का दर्शन (नेत्र) ही अंधकार के तत्व का निरूपण करने के लिए समर्थ होता है |[२८]

सन्दर्भ सूचि

1. शब्दगुणमाकाशम् | तर्कभाषा (केशव मिश्र प्रणीता), चौखंबा प्रकाशन, पृ.१८६
2. अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगहमानः | रघुवंश.१३/१
3. व्रजन्ति गुणतामर्थाः शब्दा इव विहायसः | शिशुपालवध. २/९१
4. शास्त्रेषु नैयायिकाः सदाशिवभक्तत्वाच्छैवा इत्युच्यन्ते तेन नैयायिक शासनं शैवमाख्यायते, इत्यादि हरिभद्र के षड्दर्शन समुच्चय पर गुण टीका, पृ. ५१, एशियाटिक सोसयटि प्रकाशन, ई.१९०४ नैषध परिशीलन, डॉ.चन्द्रिका प्रसाद शुक्ल उद्धृत
5. एको रुद्रो न द्वितीययातस्थे य इमल्लोकानिशतईशनी धिरित्याद्यागमाच्चेति– न्यायसार, आगम परिच्छेद, पृ.१२५,पूर्वोक्त |
6. ईश्वर इति शङ्करस्यख्या, पृ.५४४ | वही
7. न्याय कुसुमाञ्जली –स्तबक ५
8. वाचस्पति की तात्पर्य टीका, पृ.५९७ का.सं.सी.
9. अणिमादिगुणोपेतमसपृष्टपुरुषान्तरम् | शब्दमीश्वर इत्युच्चैः सार्धचन्द्रं विभर्तियः || कुमारसम्भव. ६/७५
10. विदितं वो यथा स्वार्था न मे काश्चित्प्रवृत्त्यः || कुमारसम्भव. ६/२६
11. कुमारसम्भव. ६/२८,२९
12. किरातार्जुनीयं. १८/३०, साथ ही १८/२४
13. वही १८/३६
14. वही १८/४२
15. नैषध.२/३२
16. अन्नानुरूपां तनुरुप – ऋद्धिं कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते || नैषध.३/१७ , ३/३९
17. ज्ञानायोगपद्यादेकं मन तथा यशोक्त हेतुत्वाच्चाणु – न्यायसूत्र ३/२/५६,५९ तच्चाणुपरिमाणम् – तर्कभाषा, पृ. १९१
18. नैषध. १/५९
19. नैषध. ३/३७, ५/२९ (महापरिमाण मन)
20. तर्कभाषा–उत्पत्तिक्रम,प्रमेयनिरुपणम्,तत्र पृथिव्यादीनां-गुणानारभन्ते इतिन्यायत् | पृ. १८१, चौखंबा प्रकाशन – १९५३
21. नैषध. ३/१२५
22. न्यायसूत्र ३/१/३४ -४६ पर वात्स्यायनभाष्य तथा बृहदारण्यकोपनिषद ५/५/२
23. नैषध. ८/३
24. तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मा एक एव | तर्कभाषा, पृ.३१ चौ.सं.सि.१९३४ आप्तकल्पश्चायम् यथापिताड पत्यानां तथा पितृभूत ईश्वरो भूतानाम् आगमाच्चद्रष्टाबोद्धा सर्वज्ञाता ईश्वर इति | न्यायसूत्र पर वात्स्यायन भा.४/१/२१
25. नैषध. १७/७७
26. विवरण प्रमेय संग्रह, बी.एस.एस.,पृ.१० तथा सर्वमत संग्रह, टी.एस.एस,पृ.३१
27. आलोकज्ञानभावः सर्वदर्शनसंग्रह, डा.सी.पी.शुक्ल द्वारा नैषध परिशीलन पृ.३५६ में उद्धृत्
28. नैषध. २२/३५